कहां से शुरू न करें!

लुप्त होते जा रहे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन सामान्य परिषद, भारत की कम्युनिस्ट लीग (मार्क्सवादी-लेनिनवादी)-जिसे अब कुछ लोग एक संगठन की मान्यता देने से भी हिचकिचाते हैं-ने पूरे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के लिए एक 'निबंध' जारी किया है (आइये, शुरू से ही शुरू करें, अगस्त-2013) इसमें आंदोलन की समस्याओं की चर्चा करते हुए इनके समाधान के लिए एक लाइन प्रस्तावित की गई है।

इस संगठन में पिछले बीस सालों से एक 'दस्तावेज' के आने की चर्चा होती रही है। हर साल-दो साल में यह चर्चा विशेष रूप से गरम हो उठती रही है, खासकर तब जब संगठन में कोई अंदरूनी संकट हो। अब गोदो के आने की प्रतीक्षा समाप्त हुयी है और गोदो आखिर आ ही गया है।

लेकिन यह आना भी कैसा? आज के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन की समस्याओं के संदर्भ में इससे ज्यादा तुच्छ, भौंड़े और हतोत्साहित करने वाले 'निबंध' की कल्पना नहीं की जा सकती। कोढ़ में खाज यह कि यह जितना ही तुच्छ है उतना ही अहंकारपूर्ण फतवों से भरा हुआ है मानो एक बेहद छुद्र बाबा एवरेस्ट की चोटी पर खड़ा सारे संसार के पतन पर हिकारतपूर्वक प्रवचन दे रहा हो जबकि उसकी अपने झोली हर तरह से खाली हो।

बहुत समय हुए जब इस संगठन, तब हमारा भी, की ओर से **लाल तारा**-2 (1983) और **लाल तारा**-3 (1987) प्रकाशित किये गये थे। तब लाल तारा-2 में प्रकाशित निबंधों में और लाल तारा-3 में प्रकाशित पार्टी संगठन के दूसरे सम्मेलन के दस्तावेजों में वास्तव में आंदोलन के लिए विचारधारात्मक-राजनीतिक लाइन प्रस्तावित की गयी थी। उनकी गुणवत्ता, स्पष्टता और कम से कम हमारे संगठन को स्पष्ट विचारधारात्मक-राजनीतिक दिशा देने में अप्रतिम महत्व आज भी अक्षुण्ण है।

उनके मुकाबले अब यह तुच्छ 'निबंध' हमारे सामने मौजूद है। अपनी गुणवत्ता की दृष्टि से यह इस लायक नहीं है कि इसकी चर्चा की जाय लेकिन तब भी इसमें कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के लिए जो लाइन प्रस्तावित की गई है उसकी चीर-फाड़ जरूरी है। आगे इस लेख में यही किया जायेगा।

I
विचारधारा

यह निबंध बताता है कि 'वर्तमान समय में हमारे आंदोलन की सबसे बड़ी समस्या विचारधारा और संस्कारों की है। क्रांतिकारी कम्युनिस्ट आंदोलन से जुड़े लोगों की मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा पर पकड़ बहुत कमजोर है।' इसका समाधान क्या है? 'स्वाध्याय, समूह में बैठक, विचार-विमर्श और आलोचना-आत्मालोचना'। इसके बाद यह निबंध बताता है एक ऐसी पत्रिका की भी आवश्यकता है जो पूरे कम्युनिस्ट आंदोलन के इतिहास पर वाद-विवाद और संघर्ष चलाए, देश भर में की जा रही क्रांतिकारी कार्यवाहियों में मार्क्सवाद से हो रहे भटकावों पर 'वैचारिक, राजनैतिक और सैद्धान्तिक' संघर्ष चलाये तथा 'छाये हुए कुहासे को काट कर फेंक' दे। फिर यह निबंध इसे और विस्तारित करता है और कहता है कि अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन का सार संकलन भी अत्यन्त आवश्यक है। तीसरे इंटरनेशनल से लेकर आज तक के इतिहास के सार-संकलन से इसे शुरू कर सकते हैं। सार-संकलन के लिए काफी सामग्री मौजूद है।

विचारधारा के मामले मे यह कार्यदिशा पूरे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के लिए प्रस्तावित की जा रही है। इस सबका क्या मतलब है और इसका क्या परिणाम निकलेगा यह इस संगठन के अपने रिकार्ड से स्पष्ट है। आइये इसे देखें।

लाल तारा-2 के विचारधारा पर निबंध में तथा **लाल तारा**-3 में प्रकाशित पार्टी संगठन के सम्मेलन के दस्तावेज में मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा के बारे में, आज के सही मार्क्सवाद के बारे में बेहद सटीक ढंग से बातें सूत्रित की गई हैं। वे इस प्रकार हैं :

> "मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुंग विचारधारा ही आज की सही मार्क्सवादी विचारधारा है, अंतर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग की मुक्ति का दर्शन है, इसके अतिरिक्त अन्य सभी विचारधाराएं - सभी किस्म के "मार्क्सवाद" सर्वहारा वर्ग के आंदोलन में मौजूद प्रदूषणकारी विजातीय विचार, प्रवृत्तियां और रुझानें हैं। काउत्स्की, त्रात्स्की, टीटो, ख्रुश्चेव, कास्त्रो, चे गुआरा, यूरो कम्युनिस्टों, ल्यूशाओ ची और तेङ, अल्बानिया के होजा, रोमानिया के चोसेस्कू, हो ची मिन्ह के अनुयाई ले दुआन, कोरिया के किम इल सुङ आदि सभी के विचार गैर सर्वहारा विचार की श्रेणी में आते हैं। माओ विचारधारा मानने वालों के भीतर आज जो विभ्रम की स्थिति बनी हुयी है, वह भी पूंजीवादी भटकावों, प्रवृत्तियों और रुझानों को ही दर्शाती है।" (लाल तारा अंक-2, दिसंबर 1983, पृष्ठ-14)
>
> मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ-त्से तुङ विचारधारा आज की एक मात्र सही विचारधारा है। यह अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारा एवं मेहनतकश अवाम की मुक्ति का एकमात्र दर्शन है। सभी दूसरी विचारधाराएं, सभी अन्य प्रकार के 'मार्क्सवाद' सर्वहारा आंदोलन में मौजूद विजातीय विचारधाराएं हैं। काउत्स्की, त्रात्स्की,

टीटो, ख्रुश्चेव, ल्यूशाओ ची और डेङ स्याओ-पिङ की विचारधाराएं अपने सच्चे साररूप में बुर्जुआ विचारधारा के अंग हैं और सर्वहारा की विचारधारा के विरुद्ध खड़ी हैं।

अन्य सभी विचार और चिंतन भी, जो समय-समय पर मजदूर आंदोलन मे उभरते रहे हैं-जैसे कास्त्रो, चे गुवेरा, यूरो कम्युनिस्टों होजा, चोसेस्कू, हो ची मिन्ह और ले दुआन, किम इल सुंङ आदि की विचारधाराएं भी गैर सर्वहारा विचारधाराओं की श्रेणी में ही आती हैं।" [लाल तारा-3, एकता सम्मेलन के दस्तावेज, भाकली (माले), अगस्त 1987, पृष्ठ-22]

लाल तारा-2 के निबंध में कास्त्रो और चे ग्वेवारा के बारे में ये बातें कही गयी हैं:

"एक और किस्म का मार्क्सवाद दुनिया में प्रचलन में है जो चे-गुआरा और कास्त्रो के नाम के साथ जुड़ा हुआ है। मार्क्सवाद के इस क्यूबाई संस्करण का प्रभाव मुख्यतः लातिन अमेरिकी देशों में है, वैसे पूरी दुनिया में ही इसके थोड़े बहुत अनुयायी हैं।" (वही, पृष्ठ-10)

जैसा कि 1983 के निबंध और 1987 के सम्मेलन के दस्तावेज से स्पष्ट है तब मार्क्सवादी विचारधारा का मतलब था मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा। इसमें ख्रुश्चेव-ब्रेझनेव कालीन सोवियत संघ को राजकीय पूंजीवाद वाला समाज मानना तथा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का झंडा बुलंद करना विशेष रूप से शामिल था क्योंकि संशोधनवादी इस मामले में लगातार विभ्रम फैलाने का प्रयास करते थे। इसी तरह माओ के बाद के चीन में पूंजीवादी पुनर्स्थापना मानने का सवाल भी महत्वपूर्ण था।

इस सपष्ट सूत्रीकरण के चलते और चे ग्वेवारा और फीडल कास्त्रो के बारे में स्पष्ट बातों की रोशनी में किसी को भी इसमें जरा भी संदेह नहीं था कि क्यूबा की कम्युनिस्ट पार्टी भी एक संशोधनवादी पार्टी है और क्यूबा में भी राजकीय पूंजीवाद है। तब सोवियत संघ और क्यूबा के संबंधों को देखते हुए इसके सिवा कुछ हो भी नहीं सकता था।

लेकिन पिछले एक-डेढ़ दशक में इस 'निबंध' के रचयिताओं ने इस स्पष्ट बात को बेहद धुंधला बना डाला है, इस पर कुहासे की एक मोटी घनी चादर डाल दी है। स्वयं इस 'निबंध' में यह बात कही गयी है:

"... ... ... दक्षिण कैरीबिया में आज भी फिदेल कास्त्रो की अगुवाई में क्यूबा कम्युनिज्म का परचम उठाये चल रहा है। ... ..." (पृष्ठ-1)

अब सवाल उठता है कि क्यूबा कम्युनिज्म का परचम उठाने वाला कब से बन गया? 1983 और 1987 में तो कास्त्रो और चे की विचारधारा को गैर सर्वहारा विचारधारा कहा गया था। क्या वह सूत्रीकरण गलत था? यदि नहीं तो क्या 1991 के बाद फिदेल ने अपनी विचारधारा बदल ली है। इसका कोई प्रमाण तो है नहीं। व्यवहारतः पिछले बीस सालों में क्यूबा क्रमशः राजकीय पूंजीवाद से खुले पूंजीवाद की ओर बढ़ता गया है। पिछले सालों में यह गति और तेज हुयी है।

क्या इस 'निबंध' के रचयिता यह दावा करते हैं फिदेल ने माओ विचारधारा को स्वीकार कर लिया है, महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का झंडा बुलंद कर दिया है और ख्रुश्चेव-ब्रेझनेव कालीन सोवियत संघ को राजकीय पूंजीवादी समाज घोषित कर दिया है? यदि नहीं तो वे फिर किस किस्म के मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट हैं? या इस 'निबंध' के रचयिताओं ने ही कोई नया मार्क्सवाद अपना लिया है?

क्यूबा और फिदेल के मामले में इस 'निबंध' के रचयिताओं की सोच इस बात का प्रमाण है कि इन्होंने मार्क्सवाद के सवाल पर कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में मौजूद पहले से स्पष्ट सोच में किस कदर विभ्रम फैलाया है। इस मामले को तार्किक तौर पर आगे बढ़ाने पर किसी को भी या तो मार्क्सवादी विचारधारा (मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा) छोड़नी पड़ेगी या फिर विचारधारा के नाम पर बेहद घटिया किस्म का सार-संग्रहवाद अपनाना पड़ेगा। बहुत नरमी से भी कहें तो यह सही मार्क्सवादी विचारधारा से बड़ा भटकाव है और अपनी तार्किक परिणति के तौर पर मार्क्सवाद को छोड़ने तक ले जाता है।

और ये लोग आज आंदोलन में विचारधारात्मक कमजोरी की बात करते हैं! यदि विचारधारात्मक मजबूती का मतलब इनके किस्म की मजबूती है तो इस मजबूती से खुदा बचाये!

वे विचारधारात्मक कमजोरी से मुक्ति का उपाय ये बताते हैं :

स्वाध्याय, समूह में बैठक, विचार-विमर्श और आलोचना-आत्मालोचना। इनका यह नुस्खा इस धारणा से पैदा होता है कि आंदोलन में लोग पढ़ते नहीं हैं- 'उनका ज्ञान कुछ-एक क्रांतिकारी उपन्यासों और कहानियों तक सीमित है।' इस धारणा की वस्तुगतता पर हम आगे बात करेंगे। फिलहाल तो इतना ही कि यह नुस्खा पूर्णतया अकादमिक है और यह इनके अपने अकादमिक पेटी बुर्जुआ चरित्र के पूर्णतया अनुरूप है। इन्हीं की तरह आंदोलन के अनपढ़ होने की बात करने वाली रवि सिन्हा एण्ड कम्पनी आज पूर्णतया आंदोलन से अलग होकर अकादमिक दायरों में सिमट चुकी है। जिस संगठन ने पिछले चौबीस सालों में कोई भी गंभीर निबंध या पार्टी दस्तावेज प्रकाशित न किया हो उसका दूसरों को अनपढ़ घोषित करना किस बात का परिचायक है? अहमन्यता का शिकार खोखले प्रवचक का जिसे कोई चाहकर भी गंभीरता से नहीं ले सकता।

अपने देश के आज के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन पर अपने दंभी फतवों के बाद पूरी दुनिया के कम्युनिस्ट आंदोलन पर फतवा जारी करने के लिए ये बेहद उत्सुक हैं। बल्कि कुछ फतवे तो उन्होंने जारी भी कर दिये हैं। अब वे और आगे जाना चाहते हैं। इनकी दिशा क्या है वह एक उदाहरण से स्पष्ट है।

1983 के विचारधारा पर निबंध में यह स्पष्ट तौर पर रेखांकित किया गया है कि माओ ने ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के खिलाफ 'अथक और समझौताविहीन' (पृष्ठ-9) संघर्ष चलाया। तब से आज तक समूचे क्रांतिकारी आंदोलन की सोच भी यह रही है। लेकिन इन्होंने अपनी पुरानी सोच को बदलते हुए अब यह बात कह डाली है:

"... ... ... 16 से 19 नवंबर 1957 को विश्व के 12 समाजवादी देशों की कम्युनिस्ट एवं मजदूर वर्गीय पार्टियों की एक बैठक हुयी, जिसमें एक घोषणापत्र पारित हुआ। ये सभी पार्टियां समाजवादी देशों में शासन करने वाली पार्टियां थीं। इस घोषणापत्र पर एक दृष्टि डालने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह घोषणापत्र

ख्रुश्चेवी संशोधनवाद की जीत और माओ की क्रांतिकारी लाइन की हार है। चीन की पार्टी ने घोषणापत्र पर जो समझौता किया, वह माओ विचारधारा की आत्मा के विरुद्ध है।

"यह समझौता एक ऐसे समय पर किया गया जब कम्युनिस्ट इंटरनेशनल टूट चुका था और सर्वहारा का कोई वैश्विक हेडक्वार्टर नहीं था। ... ..." (पृष्ठ-18)

इस तरह की बात करने वालों से कोई भी सहज ही पूछ सकता है कि आज की क्यूबा की कम्युनिस्ट पार्टी को कम्युनिस्ट कहना माओ विचारधारा की आत्मा के विरुद्ध है या उसके अनुरूप? लेकिन आइये इनकी बात पर लौटें।

1957 के घोषणापत्र और 1960 के बयान के बारे में स्वयं तब चीन की पार्टी ने ही 'महान बहस' में विस्तार से बताया था। उसमें इन 'समझौतों' की पृष्ठभूमि, जरूरत और चरित्र के बारे में बताया गया था। तब से सारे ही कम्युनिस्ट क्रांतिकारी उन्हें जानते हैं। इसके बावजूद 1983 में हमने माओ के 'अथक और समझौताविहीन' संघर्ष की चर्चा की थी। तब से अब क्या हो गया? क्या कोई नये तथ्य पता चल गये? कोई नये दस्तावेज मिल गये जो घटनाओं पर नयी रोशनी डालते हों? नहीं। हुआ बस यह है कि इनकी अपनी दृष्टि बदल गयी। तब वे फिदेल को गैर सर्वहारा विचारधारा का वाहक और उनकी पार्टी को संशोधनवादी पार्टी मानते थे। अब ये उन्हें कम्युनिस्ट मानते हैं। ऐसे में माओ के बारे में उनका मूल्यांकन बदलेगा ही।

कोई कह सकता है कि क्यूबा के बारे में इनकी सोच की गति को देखते हुए इन्हें माओ के बारे में डेंगपंथ की ओर ढुलकना चाहिए था होजापंथ की ओर नहीं। लेकिन पेटी बुर्जुआ सार-संग्रहवाद की नियति ही यही होती है वह कहीं का ईंट और कहीं का रोड़ा इकट्ठा कर भानुमति का कुनबा जोड़ता है। वैसे माओ को अंततः खारिज करने का एक रास्ता माओ के बारे में ज्यादा 'वामपंथी' रुख अपनाने से होकर भी जाता है। इतिहास में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जिनके अति दक्षिणपंथी होने का रास्ता अति 'वामपंथी' होने से होकर गुजरा। क्या इनके द्वारा पेश किया जाने वाला नजारा गौरतलब नहीं है-फीदेल की दृढ़ता और माओ की समझौतापरस्ती!

अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के बारे में इनके द्वारा सार संकलन की जो मांग की जा रही है उसका वास्तविक आशय यही है- पहले से मौजूद सारी स्पष्टता को समाप्त कर हर मुद्दे का धुंधला बना देना, हर मुद्दे पर कुहासे की मोटी चादर डाल देना, सही और गलत का फर्क समाप्त कर देना। कुछ मुद्दों पर तो इन्होंने अपनी ओर से यह कर भी दिया है। यदि सारे मुद्दों पर ऐसा हो जाता है तो कोई भी संशोधनवादी लाइन पेश करना एकदम आसान हो जायेगा। कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन विचारधारात्मक तौर पर और इसीलिए समग्रता में भी विघटित हो जायेगा।

अन्यथा तो उन्होंने अपनी ओर से आज देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन का जो चित्र खींचा है उससे यह सहज निष्कर्ष निकलता है कि मौजूदा संगठन और समग्र आंदोलन अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन का सार-संकलन करने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं, इस काम के लिए पूर्णतया अक्षम हैं। जो नेतृत्व अनपढ़ हो, विचारधारात्मक तौर पर बहुत कमजोर हो, गैर कम्युनिस्ट प्रवृत्तियों से बेतरह ग्रस्त हो वह भला सोवियत संघ और चीन की महान कम्युनिस्ट पार्टियों और महान क्रांतियों का सार संकलन कैसे कर सकता है? उसे तो पहले इसके लायक बनना चाहिए।

आज देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के बारे में हमारी राय 'निबंध' के रचयिताओं से भिन्न है। हम आंदोलन को इतना 'अनपढ़' और 'अक्षम' नहीं मानते। इसके बावजूद हमारी दृढ़ राय है कि आज का कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन का सार-संकलन करने में सक्षम नहीं है। इसकी वह वैचारिक परिपक्वता और अनुभवसम्पन्नता नहीं है जो इस बड़े और महत्पूर्ण कार्यभार को हाथ में ले सके। जैसा कि हमने 1990 में कहा था यह सार-संकलन सही मायने में तभी किया जा सकता है जब पुरानी क्रांतियों के स्तर के प्रयोग हो चुके हों और उससे ऊंचे स्तर के प्रयोगों की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी हो। शुरुआती सार-संकलन के लिए भी यह जरूरी है कि देशों के स्तर पर एकीकृत कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हों, उनका वर्ग संघर्ष का एक अनुभव हो और अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर इन पार्टियों का कोई केन्द्र हो।

इन शर्तों के पूरा हुए बिना आज छोटे-छोटे संगठनों द्वारा किया जाने वाला सार-संकलन बच्चों का खेल या फिर अकादमिक कार्रवाई बन जायेगा। आखिर अकादमिक बुद्धिजीवी इस तरह का शोध निरंतर करते रहते हैं। आज आम और कल इमली बोलते ही रहते हैं। 'निबंध' के रचयिताओं के पेटी-बुर्जुआ अकादमिक चरित्र को देखते हुए उनका इस तरह के सार-संकलन की ओर झुकाव बेहद सामान्य बात है। असामान्य बस इतना है कि वे इसे सारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के कार्यभार के तौर पर पेश कर रहे हैं। आखिर ये करें भी तो क्या?

रही बात देश के कम्युनिस्ट आंदोलन के इतिहास और आज के आंदोलन की वैचारिक-व्यावहारिक समस्याओं पर चर्चा और बहस के लिए एक पत्रिका निकालने की तो यह एक अच्छा प्रस्ताव है और इस तरह का प्रस्ताव हम स्वयं लम्बे समय से आंदोलन के सामने रखते रहे हैं। लेकिन क्या क्यूबा को समाजवादी देश मानने वाले और क्यूबा की कम्युनिस्ट पार्टी को कम्युनिस्ट मानने वाले हमें यह बता सकते हैं कि इस पत्रिका की वैचारिक सीमा क्या होगी? किस विचारधारात्मक जमीन पर खड़े होकर यह आंदोलन में मौजूद मार्क्सवाद से भटकावों पर संघर्ष चलायेगी? या किस विचारधारात्मक दायरे में लोग इसमें वैचारिक वाद-विवाद और संघर्ष करेंगे? जिनकी अपनी ही स्पष्ट विचारधारात्मक सीमा न हो या जो अपनी पहले की सीमा रेखा को धुंधला कर चुके हों वे दूसरों के लिए कौन

सी सीमा-रेखा खींचेंगे? और बिना स्पष्ट सीमा-रेखा के कौन सा वैचारिक वाद-विवाद और संघर्ष चलाया जा सकता है? या यह फिर सारा कुछ ई.पी.डब्ल्यू. नुमा होगा जिसकी अकादमिक दायरों में तो महत्ता है और जरूरत है लेकिन जो आंदोलन में बेहद नुकसानदेह है?

II
कार्यक्रम

इस 'निबंध' में इस बात पर बहुत हाय-तौबा मचाई गई है कि 1967 से ही कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के पास क्रांति की सही लाइन नहीं रही है। खासकर नव जनवादी क्रांति की बात करने वाले संगठनों के मामले में जड़सूत्रवादी होने और मतवादी होने का आरोप बार-बार लगाया गया है। अंत में आंदोलन के सामने बिन्दुवार कार्यक्रम रखते हुए यह कहा गया है।

"6. भारतीय क्रांति की रणनीति और रणकौशल पर विस्तृत विचार-विमर्श जरूरी है।

"7. एक भूमि कार्यक्रम, जिससे दोस्त-दुश्मन की पहचान की जा सके और मित्र शक्तियों की लामबंदी की जा सके, अत्यंत आवश्यक है।" (वही, पृष्ठ-31)

इनकी इन पवित्र इच्छाओं का वास्तविक आशय समझने के लिए इस मसले पर इनकी अपनी राय जानना बहुत फायदेमंद होगा। इस 'निबंध' में यह कहा गया है :

"जहां तक जीवन मूल्यों का प्रश्न है, हमारा देश आज भी बहुत पिछड़ा हुआ है। यहां छोटे उत्पादक और छोटे उद्यमों की बहुतायत है। ज्यादातर आबादी इन्हीं में लगी है। ये हर क्षण, हर घंटे और हर दिन प्रतिक्रियावादी विचारों को जन्म देते रहते हैं। सामाजिक जीवन में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का बोलबाला है, विधि निषेधों और अनुष्ठानों का दलदल है। सामंती मूल्यों के साथ औपनिवेशिक मूल्य भी मौजूद हैं। यहां पर इन्ही चश्मों से दुनिया को देखने और समझने के अभ्यस्त लोग हैं। यहां एक लोकतंत्र है जो महज ढोंग और छलावा है; यह जनता को इस या उस पार्टी के साथ बांधे रखने तथा संसद एवं सरकार से जोड़े रखने का काम करता है। जमीन पर या ग्रास रूट स्तर पर लोकतंत्र जैसी कोई चीज मौजूद नहीं है। 90 प्रतिशत लोग नहीं जानते कि नागरिक क्या होता है और उसका अधिकार क्या होता है। जाति व्यवस्था आज भी कायम है; यह लोकतंत्र की सबसे बड़ी बाधा है। सम्पूर्ण और सांगोपांग रूप में-आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक, सभी स्तरों पर जब तक जनवादी क्रांति सम्पन्न नहीं हो जाती, तब तक न तो जाति व्यवस्था खत्म हो सकती है, न ही किसी सच्चे लोकतंत्र की कल्पना की जा सकती है। भूमि संबंधों में एक उग्र परिवर्तन के बिना, जो ऊपर को नीचे और नीचे से ऊपर करके श्रम करने वालों को जमीन का मालिक बना दे, किसी तरह के लोकतंत्र की कल्पना करना संभव नहीं है।" (वही, पृष्ठ-22)

अपने देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में यदि कोई व्यक्ति इस पैराग्राफ को पढ़ेगा तो वह सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि इसको लिखने वाले जनवादी क्रांति के प्रस्तोता हैं और यह पैराग्राफ जनवादी क्रांति की वकालत करता है। वस्तुतः इससे मिलता-जुलता पैराग्राफ किसी भी नव जनवादी क्रांति की बात करने वाले संगठनों के लेखों या दस्तावेजों में पढ़ा जा सकता है।

लेकिन इस पैराग्राफ को लिखने वाले पिछले 30 सालों से अपने देश में समाजवादी क्रांति की बात करते रहे हैं। बल्कि इनकी धारा की आंदोलन में खासियत ही यह है कि यह धारा, भारत की कम्युनिस्ट लीग (माले) की धारा देश में समाजवादी क्रांति की बात करने वाली धारा रही है। अब तीस साल बाद 'निबंध' के रचयिता जनवादी क्रांति की बात कर रहे हैं। क्या पिछले तीस सालों में भारतीय समाज के विकास की धारा उल्टी दिशा में चल पड़ी है? क्या भारतीय समाज इस बीच मूलतः पूंजीवादी से फिर अर्द्ध-सामंती हो गया है? या इन्होंने अपनी पुरानी सोच को गलत मानकर नयी सोच अपना ली है यदि ऐसा है तो इसे सीधे-सीधे कहा जाना चाहिए। कहा जाना चाहिए कि 1983 में प्रकाशित निबंध गलत सोच का परिणाम था, कि 1987 के पार्टी सम्मेलन में पारित समाजवादी क्रांति की लाइन गलत थी।

लेकिन 'निबंध' के रचयिताओं द्वारा ऐसा कुछ नहीं किया जाता और इसके बदले इनके द्वारा कार्यक्रम और रणनीति के बारे में कुछ ऐसी बातें कह दी जाती हैं जो पहले की सोच की ठीक उल्टी हैं। यह ठीक उसी तरह किया जाता है जैसे विचारधारा के मामले में किया गया है। और ठीक उसी तरह इन बातों का सारतत्व भी सुधारवाद की ओर प्रयाण है। आइये देखें।

इस 'निबंध' में कहा गया है-'यहां एक लोकतंत्र है जो मात्र ढोंग और छलावा है; यह जनता को इस या उस पार्टी के साथ बांधे रखने तथा संसद और सरकार से जोड़े रखने का काम करता है।' कोई इनसे पूछे कि बुर्जुआ जनतंत्र का आम तौर पर ही इसके अलावा और कैसा चरित्र होता है? मजदूर वर्ग और मेहनतकश जनता के लिए इस जनतंत्र का क्या मतलब होता है? क्या विकसित पूंजीवादी देशों के जनतंत्रों में स्थिति इससे भिन्न है? क्या फ्रांस या सं.रा.अमेरिका का जनतंत्र 'जनता को इस या उस पार्टी के साथ बांधे रखने तथा संसद और सरकार से जोड़े रखने का काम' नहीं करता? क्या इसी में पूंजीवादी जनतंत्र की सफलता नहीं है? क्या इसके पतन या खात्मे की यही पूर्व शर्त नहीं है कि यह पूंजीवादी जनतंत्र ऐसा करने में अक्षम हो जाये? इससे इतर सोचना क्या पूंजीवादी जनतंत्र के बारे में उस भ्रम का शिकार होना नहीं है जिसका शिकार पेटी बुर्जुआ होता है लेकिन जिसमें स्वयं बुर्जुआ विश्वास नहीं करता?

पूंजीवादी जनतंत्र के बारे में यह पेटी बुर्जुआ दृष्टिकोण, पूंजीवादी जनतंत्र का यह पेटी बुर्जुआ आदर्शीकरण इस 'निबंध' के रचयिताओं द्वारा प्रकाशित पर्चों और लोकप्रिय लेखों में और भी भौंड़े रूप में प्रकट होता है। वहां यह उस हद तक चला जाता है कि बुर्जुआ वर्ग ठहाका लगाये बिना नहीं रह सकता।

यह पूंजीवादी जनतंत्र कितना ढोंग और छलावा है और कितना असली इसे जानने के लिए इन सज्जनों को बसपा के जमीनी स्तर के समर्थकों के पास जाना चाहिए। उनसे पूछना चाहिए कि ढोंग और छलावा वाले इसे पूंजीवादी जनतंत्र ने उन्हें क्या दिया है? वैसे अवचेतन में ये सज्जन भी इसे महसूस करते हैं। इसीलिए इन्होंने अंबेदकर और अंबेदकरवादियों के प्रति वह रुख अपना लिया है जो इन्हें 'अंबेदकरवादी मार्क्सवादी' बना देती है। प्रसंगवश, यह इनके सुधारवाद का एक और प्रमाण है, हालांकि इस 'निबंध' में इस सिलसिले में उन्होंने कोई बात नहीं की है।

ऊपरी ढांचे यानी राजनीति में इस सुधारवादी दृष्टिकोण से भी गंभीर चीज है बुनियाद यानी अर्थव्यवस्था में सुधारवादी दृष्टिकोण। यहां ये 'भूमि सम्बन्धों में उग्र परिवर्तन', 'ऊपर को नीचे और नीचे को ऊपर' तथा 'श्रम करने वालों को जमीन का मालिक' बना देने की बात करते हैं। इसमें सबसे पहले तो गौरतलब है 'ऊपर को नीचे और नीचे को ऊपर' बना देने वाली भाषा। यह आज के दलित आंदोलन की भाषा है। जिसे अब 'अंबेदकरवादी मार्क्सवादियों' ने अपना लिया है। अन्यथा तो क्या जनवादी क्रांति में होने वाला भूमि संबंधों में उग्र परिवर्तन ऊपर को नीचे और नीचे को ऊपर करना है? क्या भूमिहीन सबसे ज्यादा जमीन के मालिक और जमींदार सबसे कम जमीन के मालिक बन जाते हैं? कम से कम चीनी क्रांति में तो ऐसा नहीं हुआ था। वहां सारे उग्र भूमि सुधार के बावजूद भूमिहीन किसान बहुत थोड़ी जमीनों के मालिक बने और वे मध्यम किसानों से नीचे ही रहे। बुरे शरीफजादों को छोड़कर बाकी जमींदारों को भूमिहीन नहीं बनाया गया। तब इस भाषा के इस्तेमाल का क्या मतलब है?

सारतत्व में बात और ज्यादा गंभीर है। श्रम करने वालों को जमीन देने का मतलब है लगान या किराये पर जमीन जोतने वालों को जमीन का मालिक बना देना। लेकिन आज देश में ऐसी जमीन सरकारी आँकड़ों के हिसाब से महज दस प्रतिशत है। वास्तविकता में भी यह इससे बहुत ज्यादा नहीं हो सकती। तब क्या सारी भूमि क्रांति इसी के लिए होगी! यहां ध्यान रखने की बात है कि आज किरायेदारी में अच्छी-खासी संख्या में पूंजीवादी किरायेदारी की है तथा अब तो उल्टी किरायेदारी (छोटे किसानों द्वारा धनी किसानों या पूंजीवादी फार्मरों को जमीन किराये पर देना) चलन में आ चुकी है। क्या इन मामलों में भी जमीन श्रम करने वालों को दे देंगे? या शायद जमीन के बंटवारे को व्यापक बनाया जाये और जमीन उन खेत मजदूरों को भी बांट दी जाये जो धनी किसानों या पूंजीवादी फार्मरों के यहां खेत मजदूरी करते हैं। इसके लिए शायद धनी किसानों और पूंजीवादी फार्मरों की जमीन छीन ली जाये!

हम एकाधिक बार यह इंगित कर चुके हैं कि जब जनवादी क्रांति के कार्यभार मूलतः पूरे हो चुके हों (भले ही सुधारवादी तरीकों से) तथा बचे हुए कार्यभार भावी समाजवादी क्रांति द्वारा चलते-चलते पूरे कर दिये जाने की स्थिति में पहुंच चुके हों तब जनवादी क्रांति की बात करना वस्तुगत तौर पर सुधारवाद है। लेकिन जो लोग तीस साल पहले ही समाजवादी क्रांति की मंजिल स्वीकार कर चुके हों उनके द्वारा अब जनवादी क्रांति और भूमि संबंधों में उग्र परिवर्तन की बात करने का क्या मतलब हो सकता है? यह वैचारिक मतिभ्रम का मामला नहीं है। यह चौमुखी सुधारवाद के दलदल में धंसते चले जाने का मामला है।

अब इस तरह के लोग जब भूमि क्रांति वगैरह कार्यभार कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के सामने पेश करते हैं तो उसका व्यावहारिक निहितार्थ निकलता है सुधारवाद की लाइन ग्रहण करने का प्रस्ताव। यह देखते हुए कि आंदोलन का एक बड़ा हिस्सा पहले से ही गलत जमीन पर खड़ा है, यह प्रस्ताव वास्तव में आत्मघाती है। भूमि क्रांति या कृषि क्रांति का एजेण्डा बुर्जुआ वर्ग द्वारा सुधारवादी तरीके से मूलतः हल किया जा चुका है। इसे भावी क्रांति के एजेण्डे पर बनाये रखना या फिर से एजेण्डे पर लाने की बात करना वस्तुतः बुर्जुआ वर्ग की सेवा करना है।

इनके समग्र दृष्टिकोण के बारे में एक चीज और गौरतलब है। इन्होंने इस 'निबंध' के पहले ही पैराग्राफ में साम्राज्यवादी विश्व के संकट की बात करते हुए यह कहा है:

> "... ... ... सभी साम्राज्यवादी देश इस संकट का बोझ एक दूसरे के ऊपर डालते रहते हैं और ये सभी मिलकर अपने संकट का बोझ अविकसित, अल्पविकसित या अर्द्धविकसित देशों पर डालते हैं।" (पृष्ठ-1)

अब, हम सभी जानते हैं कि इस संकट में साम्राज्यवादियों ने अपने संकट का सबसे ज्यादा बोझ अपने देशों के मजदूर वर्ग पर डाला है। इसी ने साम्राज्यवादी देशों में बड़े पैमाने के विरोध प्रदर्शनों को जन्म दिया है। तीसरी दुनिया के संकटग्रस्त देशों में भी पूंजीपति वर्ग ने यही काम किया है यानी संकट का बोझ मजदूर वर्ग एवं अन्य मेहनतकश जनता पर डालने का। लेकिन इनकी प्रस्तुति में ठीक यही चीज गायब है। सूत्रों में बात करें तो आज का पहला बुनियादी अंतरर्विरोध यानी पूंजी और श्रम का अंतरर्विरोध ही गायब है जबकि बाकी दोनों अंतरर्विरोधों की बात की गई है।

ऐसा क्यों है? पूंजी और श्रम के अंतरर्विरोध की चर्चा ठीक संकट में भी क्यों नहीं है? असल में यह उसी सुधारवादी राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का परिणाम है जो इनकी हर बात में व्याप्त है। क्यूबा और उत्तरी कोरिया की प्रशंसा के पीछे भी यही राष्ट्रवादी दृष्टिकोण है। इसी सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण पूंजी और श्रम का अंतरर्विरोध नहीं दिखता हालांकि एक कम्युनिस्ट को सबसे पहले यही दिखना चाहिए।

मजे की बात यह है कि इसके अगले ही पैराग्राफ में, जो इसका अगला वाक्य भी है, इसकी ठीक उल्टी बात की गयी है :

> " आज अंतरसाम्राज्यवादी अंतरर्विरोध को **छोड़कर** विश्व के अन्य सभी बुनियादी अंतरर्विरोध तीव्र से तीव्रतर होते जा रहे हैं ... ...।" (पृष्ठ-1, जोर हमारा)

पहले पूंजी और श्रम का अंतरर्विरोध छोड़ दिया गया था अब अंतरसाम्राज्यवादी अंतरर्विरोध को छोड़ दिया जा रहा है। कोई इनसे पूछे कि जब सभी साम्राज्यवादी देश संकट का बोझ एक-दूसरे पर डालने का प्रयास करेंगे तो इससे क्या अंतरसाम्राज्यवादी अंतरर्विरोध तीव्र से तीव्रतर नहीं होंगे? सार संग्रहवाद की जय हो!

प्रसंगवश, इसमें अन्य 'सभी बुनियादी' अंतरर्विरोध की चर्चा है। इनके लिए तो तीन की जगह चार बुनियादी अंतरर्विरोध होंगे क्योंकि क्यूबा समाजवादी देश है और इस तरह साम्राज्यवाद बनाम समाजवादी देश का बुनियादी अंतरर्विरोध भी विद्यमान होगा। हो सकता है कि साम्राज्यवाद बनाम समाजवादी खेमे का भी अंतरर्विरोध विद्यमान हो!

और इस तरह के लोग आंदोलन के सामने कार्यक्रम और रणनीति विकसित करने का कार्यभार रख रहे हैं!

III
आंदोलन

यहां आंदोलन से आशय देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन से है जिसके बारे में इस 'निबंध' में लम्बे समय तक याद रखने वाले सुभाषित कहे गये हैं। कुछ बानगी यहां प्रस्तुत हैं :

"इस हिस्से के संगठन और गुट साररूप में अलग-अलग व्यक्तियों के प्रति जिस तरह से आस्थावान हैं, उससे सेक्ट या पंथ की तस्वीर उभरती है ... ...।" (पृष्ठ-9)

"इस हिस्से के ज्यादातर संगठन और गुट एक पूरी पार्टी का ढांचा बनाकर काम करते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि उनके संगठन के सदस्यों की संख्या, उनकी गुणवत्ता, मार्क्सवाद की समझ और उनकी क्रांतिकारी कार्यवाहियों का स्तर बोल्शेविकों की छोटी से छोटी क्रांतिकारी स्टडी सर्किल के बराबर भी नहीं है।

"इस हिस्से के वर्तमान संगठनों के नेताओं और कार्यकर्ताओं की अच्छी-खासी संख्या 1977 या 1990-91 के बाद आयी है, जिनके बारे में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मार्क्सवाद का उनका ज्ञान कुछ-एक क्रांतिकारी उपन्यासों और कहानियों तक ही सीमित है। लम्बे समय से वस्तुतः निष्क्रिय जीवन जीने के चलते बहुलांश कार्यकर्ताओं में कम्युनिस्ट चरित्र का ह्रास होता जा रहा है। ... ..." (पृष्ठ-9)

" ... ... इस हिस्से के ज्यादातर संगठन एवं व्यक्ति एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं, छिद्रान्वेषण करते हैं, और यहां तक कि अपशब्दों का भी प्रयोग करते हैं और अपने को दोषमुक्त एवं पाक-साफ समझते हैं। ... ..." (पृष्ठ-10)

"इस खेमे के संगठनों को काम करते हुए दस, बीस या चालीस साल गुजर चुके हैं। अब इस बात को बेहिचक कहा जा सकता है कि ये नाना प्रकार के अवसरवाद से ग्रस्त हैं ओर इनमें कम्युनिस्ट कार्यकर्ता के किरदार का कमोबेश क्षरण हुआ है।" (पृष्ठ -10)

"इस हिस्से के कार्यकर्ताओं का बहुलांश प्रवंचना और आत्म प्रवंचना से ग्रस्त है, क्रांतिकारी अतीत के उत्तराधिकार से वंचित है ... ...।" (पृष्ठ-10)

"हर संगठन में कुछ पढ़े-लिखे एक-दो लोग हैं जो संगठन चलाते हैं। ये लोग संगठन के शोमैन की तरह होते हैं। ... . .."
(पृष्ठ-28)

जैसा कि पहले कहा गया है ये तो महज कुछ बानगियां हैं। इस निबंध में पन्ने दर पन्ने इस तरह की बातों से रंगे हुए हैं।

इन बातों में कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन की कटु सच्चाइयां उतनी नहीं हैं जितनी उसमें हिकारत का भाव है। यह इसलिए और भी गर्हित हो उठता है कि इसमें आत्मालोचना का जरा भी पुट नहीं है। यह केवल एक बात से ही स्पष्ट है। यह संगठन पिछले पन्द्रह साल से अपने संगठन के एक व्यक्ति के प्रति आस्था पर खुले रूप में टिका हुआ है। इस संगठन में यह बात पिछले पन्द्रह सालों से खुलेआम कही जाती रही है। आंदोलन में यदि कोई संगठन एक व्यक्ति के प्रति आस्था पर आधारित पंथ के रूप में विद्यमान है तो यह संगठन है। लेकिन यहां बात कुछ इस अंदाज मे कही गयी है कि यह समस्या दूसरे संगठनों में तो विद्यमान है, इसमें नहीं। असल में भाकली (माले) की धारा में पिछले तीस पैंतीस सालों से ही आंदोलन के बारे में ऐसी बातें अपनी खुद की कमजोरियों-दिक्कतों को ढंकने का माध्यम रही हैं। दूसरों की कमजोरियों की चर्चा करके या आम कमियों की चर्चा करके अपनी विशिष्ट कमियां-कमजोरियां आसानी से ढंकी जा सकती हैं। खासकर देश के पूरे कम्युनिस्ट आंदोलन (1967 से पहले और बाद के दोनों) की बौद्धिक क्षमता के बारे में तो बहुत ही अहंकार पूर्ण ढंग से बातें की जाती रही हैं। यह और कुछ नहीं, पेटी बुर्जुआ बुद्धिजीवी का अहंकार ही है। महत्वपूर्ण बात यह है कि बौद्धिक मोर्चे पर भी इस धारा के पास दिखाने के लिए बहुत ज्यादा नहीं है।

इस 'निबंध' में नक्सलबाड़ी आंदोलन सहित पूरे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन को एक तरह से नकार दिया गया है। आश्चर्य है कि इसके बाद भी यह निबंध इस आंदोलन की बात करता है और इसके लिए कार्यभार निकालता है। इनके मुकाबले तो क्राकली, भारत ज्यादा सुसंगत है जो देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी खेमे के मूलतः और मुख्यतः विघटित होने की बात करती है। वे भी खेमे के संगठनों की गलत लाइन और नेतृत्व के संघटन को अपना आधार बनाते हैं। क्राकली, भारत यह सब कह कर खुद को कम्युनिस्ट क्रांतिकारी खेमे से अलग कर लेती है जबकि ये खेमे में बने रहते हैं और उसे लतियाते रहते हैं।

गहराई से देखें तो 'निबंध' के रचयिताओं की कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के बारे में बातें उनकी सांगठनिक कुंठा और गुफा मानसिकता की अभिव्यक्ति हैं। एक लम्बे समय से विघटित और विलुप्त होते हुए वे वास्तव में केवल स्टडी सर्किल ग्रुप तक सीमित हो गये हैं। इस बीच उन्होंने स्वयं को पूरे आंदोलन से काट लिया था। वे अपनी बनाई गुफा में कैद हो गये थे। अब वे बाहर आये हैं तो एक गुफावासी की तरह सारी दुनिया को देखते हुए। लम्बी तपस्या से ज्ञान हासिल करने वाले अहन्मना गुफावासी की तरह वे बाहर निकल कर सारी दुनिया पर तिरस्कार भरी नजर डाल रहे हैं और अपनी जुबान को और ज्यादा गंदी होने से बामुश्किल रोक पा रहे हैं। जो हर तरह से हिकारत के काबिल हैं वे दूसरों पर एक के बाद एक फतवे जारी कर रहे हैं।

बात यह नहीं है कि देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन, उसके संगठनों और संगठनों के नेतृत्व व कार्यकर्ताओं में समस्याएं नहीं हैं। लेकिन सवाल यह है कि इसे किस नजरिये से देखा जाये? एक बाहरी व्यक्ति के दृष्टिकोण से या एक अंदरूनी व्यक्ति के दृष्टिकोण से? यह पूरा 'निबंध' आंदोलन के बारे में एक बाहरी व्यक्ति का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। असल में गुफावासी पूरे आंदोलन के लिए बाहरी व्यक्ति हैं भी। न चाहते हुए भी वे जो बातें कहेंगे उसमें बाहरी व्यक्ति का दृष्टिकोण अभिव्यक्त हो जायेगा।

IV
कार्यदिशा

इतने सारे फतवों के बाद देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन की आज की अवस्था में वे कौन सी कार्यदिशा प्रस्तावित करते हैं? वह इस प्रकार है:

> "ज्यादातर संगठनों की स्थिति ऐसी है जिनमें अच्छे कम्युनिस्टों का या तो अभाव है या उनमें कम्युनिस्ट तत्व है ही नहीं। इनमें वे लोग भी शामिल हैं, जो किसी-न-किसी स्तर पर नेता की भूमिका में हैं और पोलित ब्यूरो, केन्द्रीय कमेटी, राज्य कमेटी तथा जिला कमेटियों में शामिल हैं। इनमें कम्युनिस्ट चरित्र और गुणों का अभाव है और बौद्धिक क्षमता की कमी है। इनमें से ज्यादातर लोग अपने बारे में और अपने संगठन के बारे में भी नाना प्रकार की आत्मप्रवंचनाओं के शिकार हैं। ये लोग अगर आत्मप्रवंचना से निकलकर और अनुष्ठानों का परित्याग करके आवश्यक कार्यभार हाथ में लें, जैसे मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा का गंभीर अध्ययन, जनता के साथ सही जुड़ाव, जनता के बीच रहकर कम्युनिस्ट पैदा करने का काम, जनसंघर्षों की स्थानीय कार्रवाइयां जिनमें हड़ताल तथा अन्य क्रांतिकारी कार्यवाहियां भी शामिल हैं, तो दूसरों को कम्युनिस्ट बनाने की प्रक्रिया में वे भी बेहतर कम्युनिस्ट बन सकते हैं। इस प्रकार से पार्टी गठन का काम भी प्रारंभ हो सकता है। सैकड़ों बिन्दुओं पर एक साथ काम करते हुए पार्टी निर्माण और पार्टी गठन के काम के लिए जरूरी आधार पैदा किया जा सकता है। यहां हमारा मतलब है कि बोल्शेविकों की शुरुआती स्टडी सर्किल का जो स्वरूप था, इन संगठनों को खुद को उनमें परिवर्तित कर लेना चाहिए और आगे चलकर ये स्टडी सर्किल सूझ-बूझ वाले, शिक्षित और लौह अनुशासन वाले बोल्शेविक ग्रुपों में रूपान्तरित किये जा सकते हैं। वास्तव में हम आज ऐसी स्थितियों में खड़े हैं। यह हमारे आंदोलन का यथार्थ है। ऐसे में जरूरी है कि हम एकदम शुरू से ही शुरू करें। (पृष्ठ-32)

यही इस 'निबंध' का मर्म और हेतु है।

लेकिन इस कार्यदिशा पर बात करने से पहले कुछ फुटकर बातें कर ली जायें।

इस कार्यदिशा में "ज्यादातर संगठनों" की बात की गई है। तब बाकी बचे संगठनों के लिए कार्यदिशा कौन सी होगी? वे पार्टी गठन और पार्टी निर्माण में कैसे शामिल होंगे? और क्या ये परम ज्ञानी पुरुष बतायेंगे कि ये बाकी संगठन कौन से हैं?

इस पूरे 'निबंध' में मजदूर वर्ग कहीं नहीं है। है तो बस जनता। बात कम्युनिस्ट आंदोलन की और मजदूर वर्ग गायब रहे, इसके निहितार्थ पर हम आगे बात करेंगे।

इसमें बोल्शेविकों के शुरुआती स्टडी सर्किल और 'लौह अनुशासन वाले बोल्शेविक ग्रुपों' की बात की गयी है। इतिहास में बोल्शेविकों की स्टडी सर्किल जैसी कोई चीज नहीं रही है। बोल्शेविक पार्टी के इतिहास में स्टडी सर्किल का जमाना बोल्शेविज्म के पैदा होने के पहले का था। बोल्शेविज्म की शुरुआत इन स्टडी सर्किल के एक पार्टी में संगठित होने से होती है। वस्तुतः बोल्शेविज्म-मेन्शेविज्म का विवाद शुरू ही इस मुद्दे से हुआ कि मंडल मानसिकता को त्यागकर पार्टी के हिसाब से चला जाये या कि मंडल मानसिकता के दायरे में रहा जाये? इसी तरह 'लौह अनुशासन वाले बोल्शेविक ग्रुपों' का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। लौह अनुशासन बोल्शेविक पार्टी में हो सकता है, ग्रुपों में नहीं। इसमें 'हड़ताल तथा अन्य क्रांतिकारी कार्रवाइयां' की बात की गई है। यह सामान्य बुद्धि से परे है कि हड़ताल एक क्रांतिकारी कार्रवाई होती है, यदि आशय अत्यन्त विशिष्ट किस्म की हड़ताल यानी आम राजनीतिक हड़ताल और वह भी सत्ता के खिलाफ सीधे लक्षित आम राजनीतिक हड़ताल से न हो।

अब आयें मूल बात पर।

सारी बातों का आशय यह है कि आज कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों को स्वयं को विघटित कर स्टडी सर्किलों में रूपान्तरित कर लेना चाहिए और फिर जैसे रूस में स्टडी सर्किलों से शुरू कर पार्टी का गठन और निर्माण हुआ था, उसी तरह यहां भी करना चाहिए। (प्रस्तावित पत्रिका की योजना शायद 'इस्क्रा' की तर्ज पर है!)

इस कार्यदिशा में कई पेंच हैं।

पहली बात तो यह है कि यह कार्यदिशा अनैतिहासिक दृष्टिकोण से और मनोगत इच्छा से प्रस्थान करती है। रूस में 1880 व 1890 के दशक में कम्युनिस्ट आंदोलन की शुरुआत हुयी और 1898-1903 के बीच रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी का गठन हुआ। 1880 व 1890 में जो मार्क्सवादी स्टडी सर्किल पैदा हुए थे वे ही पार्टी के भ्रूण थे, पार्टी की शुरुआत उन्हीं से हुई थी। उसके पहले कम्युनिस्ट पार्टी का कुछ भी नहीं था, था तो बस नरोदवादी क्रांतिकारी आंदोलन। भारत में भी भारत की कम्युनिस्ट पार्टी बनने के पहले 1910 व 1920 के दशक में ऐसे ही मार्क्सवादी अध्ययन मण्डल पैदा हुए थे।

आज जो कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन मौजूद हैं वे एकदम भिन्न प्रक्रिया से अस्तित्व में आये हैं। वे पहले मौजूद कम्युनिस्ट पार्टी के पतन व विघटन से अस्तित्व में आये हैं। पहले भाकपा पतित हुयी (माकपा इसी पतन की अवस्था में पैदा हुयी) और माकपा से टूटकर बनी भाकपा (माले) बिखर गयी। आज के संगठनों की शुरुआत इसी टूट-फूट और बिखराव से बने रक्तबीजों से हुयी। एक लम्बे समय तक अस्तित्वमान होने के चलते न केवल इनका निश्चित रंग-रूप है बल्कि इन सबका एक अतीत भी है। इसीलिए इन्हें रूसी पार्टी के शुरुआती स्टडी सर्किल के समकक्ष न तो रखा जा सकता है और न ही बनाया जा सकता है।

कोई कह सकता है कि यदि ये संगठन इस बात के लिए राजी हो जायें तो यह किया जा सकता है। यानी वे राजी होकर स्वयं को अध्ययन मंडलों में रूपान्तरित कर लें। परन्तु यदि उन्हें इस बात के लिए राजी किया जा सकता है तो उन्हें दूसरी ज्यादा आसान और बेहतर प्रक्रिया के लिए भी राजी किया जा सकता है–वे अखिल भारतीय पैमाने पर एक वैचारिक-सांगठनिक मंच पर आयें और वैचारिक बहस-मुबाहसे व व्यावहारिक कार्रवाइयों के जरिये एक पार्टी की ओर बढ़ें। इसी प्रक्रिया में उन समस्याओं से भी निपटें जिनका इस 'निबंध' में जिक्र है, चाहे मसला बैद्धिक क्षमता का हो या कम्युनिस्ट आचरण का। बिखरे हुए अध्ययन मण्डलों के स्तर पर वैचारिक बहस-मुबाहसे और कम्युनिस्ट रूपान्तरण की ज्यादा संभावना है कि एक अखिल भारतीय मंच पर?

यह अजीब सी बात है कि देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन अपनी सारी समस्याओं का अहसास कर खुद को अध्ययन मंडलों में विघटित करने और वहां से समस्याओं को हल करने के लिए राजी हो जायेंगे पर वे इन्हीं समस्यओं को हल करने के लिए एक अखिल भारतीय मंच पर नहीं आना चाहेंगे। उनके नेता नेतृत्व की अपनी महत्वाकांक्षा तथा अन्य गैर-कम्युनिस्ट आचरण अध्ययन मंडल में रूपान्तरण के लिए तो छोड़ देंगे पर एक अखिल भारतीय पैमाने के मंच पर आने के लिए नहीं। मनोगतवाद की जय हो!

इस मनोगतवाद की एक बहुत पुरानी जड़ है। मंसूबे पालने की पहली अभिव्यक्ति 1983 के विचारधारा पर निबंध में मिलती है। इसमें विचारधारा जनता का प्राधिकार कैसे बनती है, इसकी चर्चा करते हुए यह बात कही गयी थी:

> "... ... ... इतिहास बोध से लैस बुद्धिजीवी इसे सबसे पहले समझते हैं। इसके बाद प्रचार-प्रसार के दौरान अपने विरोधी विचारों से तीखे संघर्ष में क्रमशः इसकी वरीयता स्थापित होती जाती है। फिर ये बुद्धिजीवी इसे समाज के सबसे क्रांतिकारी और अन्य क्रांतिकारी वर्गों के पास ले जाते हैं। इसके अग्रिम तत्व इसे अंगीकार करते हैं, और इस तरह मार्क्सवादी विचारधारा एक अच्छी खासी संख्या द्वारा स्वीकार की जाती है। फिर अध्ययन चक्रों का जाल सा बिछ जाता है। ये अध्ययन चक्र ही भावी पार्टी के भ्रूण होते हैं। अध्ययन चक्रों के सदस्य क्रांतिकारी वर्गों में उत्तेजना और प्रचार के काम को अपने हाथों में लेते हैं और उन्हें आंदोलित, गोलबंद और संगठित करते हैं। इस तरह से वे समाज को समझने का काम शुरू करते हैं। उत्तेजना, प्रचार और संगठन के दौरान समाज विशेष की ठोस सच्चाइयों से उनका सामना होता है और इस तरह मार्क्सवाद से लैस अनुभवी कार्यकर्ताओं की कतार तैयार होती है, जो देश विशेष के लिए निश्चित कार्यक्रम तैयार करती है, समय-समय पर होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप रणकौशल तय करती है, अपनी कार्यशैली और सांगठनिक योजनाएं तैयार करती है, और उन्हें सामाजिक प्रयोग-आंदोलन के दौरान लागू करती है। इनमें मौजूद विसंगतियों का निवारण करती है और क्रमशः उसके द्वारा तय किये गये कार्यक्रम, रणकौशल, कार्यशैली एवं सांगठनिक योजनाओं की प्रामाणिकता ज्यादा से ज्यादा लोगों द्वारा स्वीकार की जाती है
>
> ... ...
>
> " ... ... वस्तुगत परिस्थितियों और मनोगत शक्तियों की तैयारी के मूल्यांकन के आधार पर ये कम्युनिस्ट क्रांतिकारी पार्टी निर्माण के पहले और बाद में संघर्षों का नेतृत्व करते हैं और इस तरह समाज के क्रांतिकारी वर्गों के नेतृत्व के रूप में स्वीकार किये जाने लगते हैं। ... ..."
>
> [लाल तारा-2, भाकली (माले) का मुखपत्र, दिसंबर 1983, पृष्ठ-26-27]

यह सब लिखा गया था 1983 में!

यदि इसमें यह बताया गया होता कि रूस में मजदूर वर्ग की पार्टी कैसे बनी और उसने मजदूर वर्ग एवं अन्य वर्गों को अपने पीछे कैसे गोलबंद किया तो तब भी एक बात होती। या यहां तक कि यह कहा गया होता कि आम तौर पर इतिहास में कम्युनिस्ट पार्टियां कैसे बनीं और कैसे उन्होंने मजदूर वर्ग एवं अन्य मेहनतकश वर्गों में अपनी जड़ें जमाई तो तब भी चल जाता। लेकिन यहां तो 1983 के लिए कार्यनीति प्रस्तावित की जा रही है जब भारत का कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन एक भिन्न दिशा से वहां तक पहुंचा है।

वैसे तब इस मंसूबेबाजी की एक वजह थी। इस मंसूबेबाजी के जरिये पेटी बुर्जुआ छात्रों-नौजवानों में अपने काम को केन्द्रित करने को सही ठहराया गया था। अन्यथा तो आज पश्चदृष्टि से देखने पर यह सहज ही लगता है कि 1983 में समाजवादी क्रांति की लाइन को स्वीकार करने के बाद भाकली (माले) को अपना काम औद्योगिक सर्वहारा में केन्द्रित कर देना चाहिए था। इसके बदले कभी भविष्य में 'बुनियादी वर्गों' में काम की अस्पष्ट बात करते हुए 1998 तक पेटी बुर्जुआ छात्रों-नौजवानों का अध्ययन मंडल चलाया जाता रहा। इस निबंध के रचयिता अभी भी यही कर रहे हैं और अब आंदोलन के अन्य संगठनों को यही करने की सलाह दे रहे हैं।

अध्ययन मंडलों की इस मंसूबेबाजी में 1983 में और आज भी एक बहुत गंभीर विच्युति विद्यमान है। यह पूरे आंदोलन के संदर्भ में ज्यादा खतरनाक है।

'निबंध' में अध्ययन मंडलों के 'जनता के साथ सही जुड़ाव', 'जनता के बीच रह कर कम्युनिस्ट पैदा करने' की बात की गयी है। 1983 के निबंध में भी 'सबसे क्रांतिकारी और अन्य क्रांतिकारी वर्गों' की बात की गयी है। बोल्शेविक पार्टी का जिक्र करने वालों और उसके उदाहरण को प्रत्यक्षतः या परोक्षतः अनुकरण करने की सलाह देने वालों की ओर से यह बेमिसाल विकृतीकरण है।

रूस में 1890 के दशक में मार्क्सवादी अध्ययन मण्डल 'जनता' के बीच में नहीं गये। वे मजदूर वर्ग के बीच गये। 1894 तक ये अध्ययन मण्डल मजदूर वर्ग से अलग-थलग थे हालांकि इन मण्डलों में मजदूर शामिल थे। रूस के मार्क्सवादियों ने 1883 में श्रम मुक्ति दल की स्थापना के समय से ही मजदूरों में प्रचार कार्य किया था। मार्क्सवादी अध्ययन मण्डल वस्तुतः प्रचार मण्डल ही थे। 1894 के बाद जब रूस में मजदूर आंदोलन शुरू हुआ, मजदूरों के स्वतः स्फूर्त संघर्ष शुरू हुए तो अध्ययन मण्डल इस आंदोलन में कूदे और इस तरह मार्क्सवादी अध्ययन मण्डलों और मजदूर आंदोलन का मेल हुआ। कहीं बाद में ही जाकर लेनिन और सहयोगियों ने यह जोर दिया कि अब कम्युनिस्ट आंदोलन इतना आगे बढ़ गया है कि बाकी वर्गों में भी अपनी शक्तियों को भेजे।

कहने की बात नहीं कि रूस की यह प्रक्रिया तब आम बात मानी जाती थी। काउत्स्की ने 1891 में लिखित अपने 'अरफुर्ट कार्यक्रम' में इसकी विस्तार से व्याख्या की है। यहां यह कह देना होगा कि स्वयं भारत में भी यही हुआ था। यहां जो मार्क्सवादी अध्ययन मण्डल पैदा हुए उन्होंने देश के औद्योगिक केन्द्रों (मुंबई, कोलकता, चेन्नई, कानपुर, लाहौर इत्यादि) में मजदूरों में काम किया और यहीं से भारत की कम्युनिस्ट पार्टी बनी। चीन में भी 1919-20 के बीच यही हुआ था।

इतिहास के इस स्पष्ट सबक के बाद 'जनता' की बात करने का क्या तुक हो सकता है? यदि बोल्शेविक पार्टी का अनुसरण करना है तो मार्क्सवादी अध्ययन मण्डलों को मजदूर वर्ग के बीच जाना चाहिए, 'जनता' के बीच नहीं क्योंकि 'जनता' का हमारे यहां मतलब आम तौर पर पेटी बुर्जुआ के विभिन्न हिस्से होते हैं-शहरी मध्यम वर्ग और किसान। भाकली (माले) के लिए तो पिछले तीस-पैतीस सालों से 'जनता' का मतलब पेटी-बुर्जुआ छात्र-नौजवान ही रहे हैं। (हमारा आशय इस 'निबंध' के रचयिताओं से है।)

पूरे 'निबंध' से मजदूर वर्ग की बात यूं ही गायब नहीं है। बात कम्युनिस्ट आंदोलन की हो और मजदूर वर्ग की चर्चा न हो इसका निश्चित और गंभीर मतलब है। इसके बदले 'जनता' की बात इसे निश्चित रूप-रंग प्रदान कर देती है। इसका सीधा सा मतलब है पूरे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में पेटी-बुर्जुआ दृष्टिकोण का बहुत बुरी तरह हावी होना। इस 'निबंध' के रचयिताओं का सुधारवाद की ओर भटकाव इसी पेटी-बुर्जुआ दृष्किोण के लम्बे समय तक हावी होने का परिणाम है। इसी के कारण अपने को कम्युनिस्ट पार्टी कहने वाली और 'निबंध' के रचयिताओं के अनुसार देश के 84 जिलों में फैली भाकपा (माओवाादी) का मजदूर वर्ग में जरा भी आधार नहीं है।

इस तरह 'निबंध' के रचयिताओं द्वारा जो कार्यदिशा प्रस्तावित की जा रही है वह 1890 के दशक में रूसी पार्टी द्वारा अपनाई गयी दिशा नहीं है। यह इनकी ही अपनी मनगढ़ंत दिशा है जिसे उन्होंने 1983 में सूत्रित किया था, पेटी बुर्जुआ छात्रों-नौजवानों में काम को केन्द्रित करने को जायज ठहराने के लिए। इस लाइन पर पिछले तीस सालों से चलते हुए वे एक कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन से मार्क्सवादी अध्ययन मंडल में विघटित हो चुके हैं (वह भी पेटी-बुर्जुआ छात्रों-नौजवानों का अध्ययन मण्डल)। अब ये चाहते हैं कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के सभी संगठन खुद को ऐसे ही अध्ययन मण्डलों में विघटित कर लें। इस तरह यह वास्तव में कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन को विघटित और विसर्जित करने की कार्यदिशा है।

इसके मुकाबले हमारी यह स्पष्ट राय रही है कि देश के सभी कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों को अपने व्यावहारिक काम को मजदूर वर्ग में, मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी लामबंदी के लिए, केन्द्रित करना चाहिए। यहीं से सही मायने में कम्युनिस्ट रूपान्तरण का रास्ता खुलता है और यहीं से क्रांति की वैचारिक समस्याओं के अहसास का समान एवं वस्तुगत धरातल पैदा होता है। इसी के साथ इन संगठनों का देश के पैमाने पर एक मंच पर आना, चाहे इस मंच की शुरुआत कितने ही निम्न स्तर से हो, देश में अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के गठन और निर्माण का रास्ता खोलता है। वैचारिक बहस-मुबाहसे के लिए कोई सामूहिक पत्रिका इसमें बहुत मददगार होगी।

V
अंत कथन

बहुत समय हुए जब इस 'निबंध' के रचयिताओं ने हमारे ऊपर कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन को विसर्जित करने का आरोप लगाया था। यह नवंबर 1996 की बात है। कहने की बात नहीं कि तब ये भी भाकली (माले) को एक कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन मानते थे और उन्हें इसके विसर्जित हो जाने की प्रकटतः बहुत चिंता थी।

लेकिन हमारे ऊपर झूठा आरोप लगाने के डेढ़ साल बाद इन्होंने संगठन को विसर्जित करने की कार्रवाई खुद ही शुरू कर दी। इन्होंने कभी मई-जून 1998 में तत्कालीन केन्द्रीय निकाय, सी.ओ.सी. को भंगकर इसके बदले एक ढीला-ढाला निकाय गठित कर दिया। इसको इन्होंने सामान्य परिषद का नाम दिया। इस सामान्य परिषद में पेशेवर क्रांतिकारी, अंशकालीन कार्यकर्ता और पार्टी समर्थक सभी

थे। सी.ओ.सी. के अब तक सचिव रहे का. रामनाथ अब सभी जिम्मेदारियों से मुक्त होकर (वे सामान्य परिषद के सदस्य नहीं बने) सलाहकार बन बैठे। बिना किसी जिम्मेदारी और उत्तरदायित्व वाला यह सलाहकार समूचे संगठन में सर्वाधिकार संपन्न था।

इस सामान्य परिषद ने अपने सलाहकार के नेतृत्व में पहला काम यह किया कि 1997 के सम्मेलन द्वारा तय सितंबर 1998 के सम्मेलन का बहिष्कार करके संगठन में फूट डाल दी। इस तरह अपने संगठन के विसर्जन की दिशा में उन्होंने दूसरा कदम उठाया।

यह सामान्य परिषद जैसा कि होना था, दो-तीन साल बाद निष्क्रिय हो गई। अब संगठन किसी केन्द्रीय निकाय के बिना ही चलने लगा। हमें आज भी नहीं पता वहां काई केन्द्रीय निकाय मौजूद है या नहीं।

इन्होंने अपने सांगठनिक विसर्जन के समांतर राजनीतिक विसर्जन की भी प्रक्रिया अपना ली थी। 1997 में ही इन्होंने कुछ ऐसी बातें कही थीं जो 1983 व 1987 की स्पष्ट विचारधारात्मक-राजनीतिक दिशा को धूमिल कर विभ्रम पैदा करती थीं। वक्त के साथ उनकी यह गति जोर पकड़ती गयी और अब तो प्रस्तुत 'निबंध' से स्पष्ट है कि इनकी कोई निश्चित राजनीतिक लाइन नहीं रह गयी है। रह गयी है तो बस सार-संग्रह की हुयी सुधारवादी प्रवृत्तियां।

इस तरह इस 'निबंध' के जारी करने के समय तक आते-आते पहले का कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन राजनीतिक और सांगठनिक तौर पर विसर्जित हो चुका है। अब तो इसने इस 'निबंध' के रूप में खुद ही अपना शिलालेख तैयार कर लिया है। वस्तुतः अध्ययन मण्डलों में रूपान्तरण की लाइन इनके खुद के लिए है। यह विद्यमान वास्तविकता को औपचारिकता प्रदान करना है, 'डी फैक्टो' को 'डी जूरे' बनाना है।

'यह बहुत दुःखद है', लेकिन वास्तविकता है।

■■■